श्रीपुरुषोत्तमलाल मेनारिया
एम० ए०, साहित्यरत्न

राजस्थानी साहित्य में
जैन साहित्यकारों का स्थान

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में राजस्थान को परम गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है. राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने अपने धर्म और मान-मर्यादा की रक्षाहेतु असीम त्याग और बलिदान किए हैं. गौरवपूर्ण मृत्यु प्राप्त करना राजस्थानी जीवन का सदियों तक प्रधान उद्देश्य बना रहा और राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने सांसारिक सुख-विलासों को तुच्छ समझते हुए मरण को महान् त्यौहार के रूप में अंगीकृत किया. मरणत्यौहार के विषय में कहा गया है—

टह टह धुरे त्रमागला ह्वै सिंधव ललकार।
चित्त कूंकभ चैलां चहे, आज मरण त्युंहार ॥

अर्थात्—नक्कारे बज रहे हैं, सिंधुराग युक्त ललकार हो रही है और चित्त हाथियों से सामना करना चाहता है क्योंकि आज मरण-त्यौहार है.

आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय।
बहू बलेवा हूलसै, पूत मरेवा जाय ॥

अर्थात्—आज घर पर सास कहती है कि उसको अचानक हर्ष क्यों हो रहा है? इसलिए कि उसकी पुत्र-वधू सती होने के लिए उमंगित हो रही है और पुत्र युद्धभूमि में मरने जा रहा है!

सुत मरियो हित देस रे, हरख्यो बंधु समाज।
मां नहं हरखी जनम दे, जतरी हरखी आज ॥

अर्थात्—पुत्र देश-हित मारा गया तो बन्धुसमाज प्रसन्न हुआ. मां पुत्र को जन्म देकर जितनी प्रसन्न नहीं हुई थी उतनी उसके मरने पर हुई है.

इस प्रकार राजस्थान भारत देश की वीर-भूमि के रूप में विख्यात हो गया है, जिसके विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टाड ने लिखा है—"राजस्थान में एक भी छोटी रियासत ऐसी नहीं है जिसमें थर्मोपोली जैसी युद्ध-भूमि न हो और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा नहीं उत्पन्न किया हो.[1]

राजस्थान को वीर-भूमि बनाने का प्रधान श्रेय जहाँ राजस्थान के रणबांकुरे वीरों को है, वहां उसे वीरभूमि के रूप में जगत्विख्यात करने का श्रेय साहित्य एवं साहित्यकारों को है. राजस्थान के साहित्यकार लेखनी के साथ ही तलवार के भी धनी रहते हुए स्वयं युद्ध-भूमि में वीरों के साथ मरने-मारने के लिए तत्पर रहे हैं. ऐसे वीर-रसावतार कवियों की परम प्रभावशाली वाणी से प्रेरित होते हुए राजस्थान के अगणित वीरों और वीरांगनाओं ने अपने प्राण सहर्ष ही

---

१. दी एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान, कुक्स संस्करण, लंदन, भूमिका, भाग १, १६२० ई०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्सर्ग कर दिए. इसलिए जेम्स टाड के उक्त कथन के अंतिम भाग को इस प्रकार संशोधित करना सर्वथा उपयुक्त होगा—

"और कदाचित् ही कोई ऐसा नगर हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा तथा होमर जैसा कवि नहीं उत्पन्न किया हो."

"राजस्थानी साहित्य' से अनेक तात्पर्य हो सकते हैं. यथा—१ राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य, २. राजस्थान में रचित संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, खड़ीबोली, उर्दू और फारसी भाषाओं का साहित्य, ३. राजस्थानियों का साहित्य, फिर चाहे वह किसी भी भाषा में रचित हो, ४. राजस्थान से सम्बन्धित साहित्य, चाहे वह किसी भी विषय अथवा भाषा में रचित हो. 'राजस्थानी साहित्य' से अभिप्राय उक्त परिभाषाओं में से प्रथम परिभाषा अर्थात् "राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य" मानना ही उपयुक्त होगा.

राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण :

राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण श्री नरोत्तमदास जी स्वामी और रामनिवास जी हारीत ने निम्नलिखित दो भागों में किया है :—

१. डिंगल साहित्य.

२. साधारण बोलचाल की राजस्थानी का साहित्य.[1]

श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने शैलियों की दृष्टि से राजस्थानी साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया है—

१. जैन-शैली २. चारणी-शैली ३. लौकिक-शैली.[2]

डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने राजस्थानी की साहित्य शैलियाँ चार मानी हैं—

१. जैन-शैली, २. चारण-शैली, ३. संत-शैली, और ४. लौकिक-शैली.[3]

श्री सीतारामजी लालस ने राजस्थानी साहित्य को निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया हैं—

१. जैन-साहित्य, २. चारण-साहित्य, ३. भक्ति-साहित्य, और ४. लोक-साहित्य.[4]

राजस्थानी साहित्य के उक्त सभी वर्गीकरण अपूर्ण हैं क्योंकि इनमें राजस्थानी साहित्य के कतिपय प्रमुख रूपों का समावेश नहीं हो पाता. राजस्थानी साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित सात भागों में करना सर्वथा समीचीन होगा—

१. जैन-साहित्य,
२. डिंगल-साहित्य,
३. पिंगल-साहित्य,
४. पौराणिक एवं भक्ति-साहित्य,
५. संत-साहित्य,
६. लोक-साहित्य, और
७. आधुनिक-साहित्य.

हमारे देश में कालक्रमानुसार क्रमशः वैदिक (छान्दस), संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश नामक प्राचीन भाषाओं का प्रभुत्व रहा. राजस्थानी भारतीय आर्य-भाषा परिवार की एक आधुनिक भाषा मानी गई है. राजस्थानी भाषा का

---

१. राजस्थान रा दूहा भाग १,नवयुग साहित्य मन्दिर पो० बा० नं० ७८ दिल्ली प्रथम संस्करण १९३५ ई०,प्रस्तावना पृ० ४२.

२. राजस्थानी साहित्य एक परिचय, नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर. आधुनिक पुस्तक भवन, ३०।३१ कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता, ७.

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० ५. —राजस्थानी शोध-संस्थान, चोपासनी, जोधपुर,

४, राजस्थानी शब्दकोष, प्रस्तावना, पृ० ८४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्भव राजस्थान में प्रचलित नागर-अपभ्रंश से हुआ है.[1]

राजस्थानी भाषा के उद्भव-काल के विषय में विभिन्न मत प्रकट किये गये हैं. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने राजस्थानी और अन्य भारतीय आधुनिक भाषाओं का उद्भव-काल वि० सं० ८१७ निर्धारित किया है.[2]

राजस्थानी भाषा-साहित्य का आरम्भ-काल वि० सं० १०४५ भी लिखा गया है.[3]

श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी भाषा का उद्भव वि० सं० ११५० लिखा है.[4]

राजस्थानी भाषा-साहित्य की प्राचीनतम रचना के रूप में 'पूषी' अथवा 'पुष्य कवि' द्वारा वि० सं० ७०० में रचित अलंकार-ग्रन्थ का उल्लेख मात्र प्राप्त होता है.[5]

यह कृति अद्यावधि अप्राप्य है अतएव इसके विषय में निश्चितरूपेण मत नहीं व्यक्त किया जा सकता. इसी प्रकार चित्तौड़—नरेश खुमाण द्वितीय [वि० सं० ८७०-९००] कृत 'खुमाण-रासो' का उल्लेख भी प्राप्त होता है किन्तु यह ग्रंथ भी प्राप्य नहीं है.[6] १८वीं सदी में दौलतविजय अपर नाम दलपतविजय रचित खुमाण-रासो और उक्त खुमाण रासो को एक ही कृति मान लेने के कारण विद्वानों में एक विवाद अवश्य उठ खड़ा हुआ है.[7] इस प्रकार राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उक्त ग्रंथों को प्रमाण स्वरूप नहीं प्रस्तुत किया जा सकता.

उद्योतन सूरि द्वारा वि० सं० ८३५ में लिखे गये 'कुवलयमाला' कथाग्रन्थ से राजस्थानी भाषा के मरुदेशीय रूप का उल्लेख नाम सहित इस प्रकार प्राप्त होता है—

वंके जडे य जड्डे बहु भोइ कठि(ढि)ण, पीण सू (थू) णंगे।
अप्पा तुप्पा भणिरे अह पेच्छइ मारुए तन्तो ॥[8]

उक्त प्रमाण से प्रकट है कि राजस्थानी भाषा का उद्भव वि० सं० ८३५ में हो चुका था और उसके मरुदेशीय रूप की प्रतिष्ठा भी हो चुकी थी. इसलिए उद्योतन सूरि ने देश की तत्कालीन अठारह उल्लेखनीय प्रमुख भाषाओं में मरुदेशीय भाषा की गणना की. इस प्रकार राजस्थानी भाषा-साहित्य का उद्भवकाल नवमी शताब्दी विक्रमीय मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए.

नवीं शताब्दी से आधुनिक काल तक राजस्थानी भाषा-साहित्य का निर्माण निरन्तर होता रहा है जिससे इस साहित्य की सम्पन्नता स्वतः प्रकट होती है. राजस्थान में ब्राह्मण-पण्डितों, राजपूतों, चारणों, मोतीसरों, ब्रह्म भट्टों, ढाढ़ियों, जैनसाधु और साध्वियों, यतियों, निर्गुणी संतों आदि साहित्यानुरागियों द्वारा प्रचुर परिमाण में राजस्थानी भाषा-साहित्य का निर्माण, संरक्षण, संवर्द्धन, अनुवाद, टीका आदि कार्य सुचारु रूप में सम्पन्न हुआ. राजस्थानी भाषा-साहित्य

---

१. राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति और विकास के विषय में विशेष विवरण लेखक की एक पुस्तक "राजस्थानी भाषा की रूपरेखा" प्रकाशक—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस में पृ० ७।२३ पर दृष्टव्य है.

२. हिन्दी काव्यधारा, किताब महल, प्रयाग, प्रस्तावना पृ० १२.

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृ० १०३.

४. राजस्थानी भाषा और साहित्य, नवयुग ग्रन्थ कुटीर बीकानेर, पृ० २२.

५. (क) डा० रामकुमार वर्मा, 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', रामनारायणलाल इलाहाबाद, १९५८ पृ० ४९.
(ख) प्रो० उदयसिंह भटनागर, हिन्दी साहित्य भाग २, भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, १९५९ पृ० ६२०.

६. शिवसिंह सरोज, सातवां संस्करण, १९२६ पृ० ९.

७. (क) रामचन्द्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', सातवां संस्करण, सं० २००८ पृ० ३३.
(ख) डा० रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, १९३८ पृ० १४४.

८. (क) कुवलयमाला कथा, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पद्मश्री मुनि जिनविजयजी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई.
(ख) अपभ्रंश काव्यत्रयी, सं० लालचन्द्र भगवानदास गांधी, गायकवाड़-ओरियन्टल सीरीज, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा पृ० ९२-९३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीनता, विषयों की विविधता, रचना-शैलियों की अनेकरूपता, पद्य के साथ ही गद्य की प्रचुरता और उत्कृष्टता की दृष्टि से विशेष महत्त्व का माना गया है. यथा—

"भक्ति साहित्य हमें प्रत्येक प्रांत में मिलता है. सभी स्थानों में कवियों ने अपने ढंग से राधा और कृष्ण के गीतों का गान किया है किंतु राजस्थान ने अपने रक्त से जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह अद्वितीय है. और उसका कारण भी है—राजस्थानी कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकताओं का स्वयं सामना करते हुए युद्ध के नक्कारे की ध्वनि के साथ स्वभावत: अयत्नज काव्य-गान किया. उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव के ताण्डव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था. क्या आज कोई अपनी कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की रचना कर सकता है! राजस्थानीय भाषा के प्रत्येक दोहे में जो वीरत्व की भावना और उमंग है वह राजस्थान की मौलिक निधि है और समस्त भारतवर्ष के गौरव का विषय है.[1]

—**विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर**

"राजस्थानी वीरों की भाषा है. राजस्थानी-साहित्य वीर-साहित्य है, संसार के साहित्य में उसका निराला स्थान है. वर्तमान काल के भारतीय नवयुवकों के लिए तो उसका अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए. इस प्राण भरे साहित्य और उसकी भाषा के उद्धार का कार्य अत्यन्त आवश्यक है. मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब हिन्दू विश्वविद्यालय में राजस्थानी का सर्वांगपूर्ण विभाग स्थापित हो जाएगा, जिसमें राजस्थानी भाषा और साहित्य की खोज तथा अध्ययन का पूर्ण प्रबन्ध होगा.[2]

—**महामना मदनमोहन मालवीय**

'साहित्य की दृष्टि से भी चारणी कृतियाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं. उनका अपना साहित्यिक मूल्य है और कुल मिल कर वे ऐसी साहित्यिक निधियाँ हैं जो अधिक प्रकाश में आने पर आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में अवश्य ही अत्यन्त महत्त्व का स्थान प्राप्त करेगी.'

—**श्री आशुतोष मुकर्जी**[3]

डिंगल साहित्य

राजस्थानी साहित्य के अन्तर्गत डिंगल एक विशेष शैली है. डिंगल को प्राधान्य देते हुए अनेक विद्वानों ने डिंगल को राजस्थानी काव्य का पर्याय मान लिया है. कतिपय विद्वानों ने डिंगल को राजस्थानी का साहित्यिक रूप कहा है. उक्त दोनों ही मत निराधार हैं. राजस्थानी साहित्य के अन्तर्गत जैन-साहित्य, पौराणिक साहित्य, मौखिक रूप से उपलब्ध होने वाला लोक-साहित्य, पिंगल साहित्य और आधुनिक शैली में लिखे हुए साहित्य का भी समावेश होता है किन्तु इस समस्त साहित्य को डिंगल नहीं कहा जा सकता. इसी प्रकार इन सभी रचनाओं को डिंगल नहीं मानते हुए असाहित्यिक भी नहीं कहा जा सकता. डिंगल इस प्रकार राजस्थानी साहित्य की एक प्रधान शैली ही है जिसको राजस्थान के समस्त भागों में अपनाया गया है. डिंगल का मूल आधार पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मारवाड़ी है और डिंगल में लिखने वाले मुख्यत: चारण हैं. डिंगल ने राजस्थान और राजस्थानी भाषा को एकरूपता प्रदान की है. डिंगल साहित्य में अनेक प्रबन्धकाव्यों के साथ ही पर्याप्त मात्रा में मुक्तकगीत, दूहा, झूलणा, कुण्डलिया, नीसाणी और छप्पय आदि प्राप्त होते हैं. डिंगल गीत गाए नहीं जाते वरन् वैदिक ऋचाओं की भाँति प्रभावशाली शैली में उच्चरित किये जाते हैं. डिंगल गीतों के प्रकार १२० तक प्रकाश में आ चुके हैं.

डिंगल कवि कलम चलाने के साथ ही तलवार के भी धनी होते थे. युद्धक्षेत्र में स्वयं लड़ते हुए अपनी वीर रसपूर्ण वाणी से योद्धाओं को कर्तव्यपथ में अग्रसर रहने हेतु प्रोत्साहित करते थे. ओजगुण सम्पन्नता, रस—परिपाक, ऐतिहासिकता तथा प्रभावशालिता की दृष्टि से डिंगल काव्यों का हमारे साहित्य में विशेष स्थान है. वीरता के साथ ही भक्ति

---

१. (क) माडर्न रिव्यू, कलकत्ता, सितम्बर १९३८, जिल्द ६४, पृ० ७१०.
(ख) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी भाग ४५, अंक ३, कार्तिक सं० १९९७ पृ० २२८-३०

२. ठाकुर रामसिंह जी का अध्यक्षीय अभिभाषण, अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य सम्मेलन, दिनाजपुर सं० २००१ पृ० ११-१२.

३. वही.

Jain Education International · For Private & Personal Use Only · www.jainelibrary.org

और शृंगार भी डिंगल कवियों के प्रिय विषय रहे हैं. वीरता शृंगार और भक्ति की त्रिवेणी में स्नान कर मध्यकालीन राजस्थानी शूरवीर अनुपम वीरता और त्याग-भावना का परिचय दे सके हैं. डिंगल काव्यों से हमें स्वाधीनता, स्वाभिमान और आत्मरक्षा का अमर संदेश प्राप्त होता है.

डिंगल साहित्य की उत्कृष्टता सभी विद्वानों ने स्वीकार की है, किन्तु डिंगल[1] शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रकट किए गए मतों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है. इनमें से प्रायः सभी मत अनुमानाश्रित हैं.

डिंगल रचनाओं में शिवदास चारण (१४७० वि० १४१४ ई०) कृत 'अचलदास खीची री वचनिका' दुरसा जी आढ़ा (१५९२-१७१२ वि०. १५३६-१६५६ ई०) की 'विरुद्ध छिहत्तरी' और मुक्तक गीत, ईसरदास जी बारहठ (१५९५ वि० १६७६ वि० सं०) कृत 'हाला झाला रा कुंडलिया' और हरिरस, महाराज पृथ्वीराज राठौड़ (वि० सं० १६०६-१६५७, १५५० से १६०१ ई०) कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' 'सांयां जी झूला (१६३२ से १७०३ वि० सं०) कृत 'रुकमिणीहरण' व 'नागदमण' कविया करणीदान जी (रचना काल संवत् १८०० लगभग) कृत 'सूरजप्रकाश' कविराजा बांकीदास (सं० १८२८ से १८९०) कृत अनेक लघुकाव्य, महाकवि सूरजमल मिश्रण (१८७२ से १९२० वि० सं०) कृत 'वीरसतसई, केसरीसिंह बारहठ (१९२९ से १९९८ वि० सं०) कृत स्फुट पद्य और नाथूदान महियारिया (वर्तमान) कृत 'वीर सतसई' विशेष उल्लेखनीय हैं.

पिंगल-साहित्य

पिंगल का अर्थ छन्दशास्त्र होता है. राजस्थानी पिंगल साहित्य से तात्पर्य अनेक विद्वानों ने ब्रजभाषा लिया है किन्तु पिंगल का अर्थ ब्रजभाषा किसी भी कोष में उपलब्ध नहीं होता. राजस्थानी पिंगल साहित्य से तात्पर्य मुख्यतः शौरसेनी प्रभावित राजस्थानी काव्यों के उन रूपों से है जिनकी रचनाएं परम्परागत छन्दों में हुई हैं. शौरसेनी अथवा ब्रजभाषा का प्रभाव अनेक राजस्थानी काव्यों पर न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध होता है. राजस्थानी पिंगल-रचनाओं में महाकवि चन्द कृत 'पृथ्वीराज रासो [इसकी प्राचीनतम प्रति सं० १६६४ में लिखित उपलब्ध हुई है और राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के ग्रंथागार में सुरक्षित है], नरहरिदास बारहठ [वि० सं० १६४८ से १७३३] कृत अवतारचरित्र, महाराजा बहादुरसिंह, किशनगढ़ [शा० का० १७४९-१७८२ वि० सं०] कृत मुक्तक छन्द, गणेशपुरी [ज० सं०१८८३] कृत 'वीर विनोद' [महाभारतगत प्रसंग पर आधारित], महाराजा प्रतापसिंह, जयपुर [वि० १८२१-१८६०] महाराणा जवानसिंह उदयपुर [वि० १८५७-१८९५] राजकुमारी सुन्दरकुंवरी, किशनगढ़ [वि० सं० १७९१-१८५३] की रचनाएं और स्वरूपदास कृत 'पाण्डव यशेन्दु चन्द्रिका [२०वीं सदी] महत्त्वपूर्ण हैं.

पौराणिक एवं भक्ति साहित्य

राजस्थानी भाषा में पुराण-ग्रन्थों पर आधारित साहित्य भी विशाल परिमाण में लिखा गया है. इस प्रकार का साहित्य पद्य के साथ ही गद्य में भी प्राप्त होता है इसलिए विशेष महत्त्वपूर्ण है. राजस्थानी पौराणिक साहित्य में राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा आदि के साथ ही, हरिश्चन्द्र, उषा, अनिरुद्ध के चरित्रों का विस्तृत निरूपण हुआ है. साथ ही ब्रह्माण्ड-पुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवत और सूर्यपुराण के टीका युक्त राजस्थानी अनुवाद भी मिलते हैं. पौराणिक साहित्य में सोढ़ी नाथी [अमरकोट] कृत बालचरित्र [सं० १७३१] और कंसलीला [सं० १७३१] सम्मन बाई कविया [अलवर] कृत कृष्ण-बाल लीला, भीमकवि कृत हरि लीला [र० का० सं०१५४३] तथा श्रीमद्भागवत, हरिवंश पुराण और विष्णु-पुराण सम्बन्धी रचनाएं उल्लेखनीय हैं.

१. डा० हीरालाल माहेश्वरी, राजस्थानी भाषा और साहित्य, आधुनिक पुस्तक भवन ३०-३१. कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता ७, पृ० ६-१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संत-साहित्य

राजस्थान प्राचीनकाल से ही अनेक सन्त-सम्प्रदायों का केन्द्र रहा है. राजस्थानी वीरों के आश्रय में अनेक सन्त-सम्प्रदायों को प्रोत्साहन मिला. राजस्थान में दादू, रामस्नेही, निरंजनी, विष्णोई आदि सन्त-सम्प्रदायों का जन्म भी हुआ. दादू, रज्जब, रामचरणदास, सुन्दरदास, जसनाथ जैसे अनेक सन्तों की वाणी का राजस्थान में ही नहीं बाहर भी प्रसार है.

राजस्थानी संत-साहित्य में धार्मिक उदारता का प्रतिपादन हुआ है. इसमें आत्मा और परमात्मा की एकता, बताते हुए सभी वर्गों और जातियों के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है.[१]

लोक-साहित्य

जनता से मौखिक परम्परानुसार प्राप्त होने वाला साहित्य लोकसाहित्य कहा जाता है. विद्वानों ने इस साहित्य को ग्राम-साहित्य और लोकवार्ता साहित्य भी कहा है. राजस्थान का प्राकृतिक वातावरण अनेक विविधताओं से पूर्ण है. तदनुसार राजस्थान का लोक-साहित्य भी विविध रूपों में उपलब्ध होता है. राजस्थान में प्राचीनकाल से ही मौखिक साहित्य को लिपिबद्ध करने की परिपाटी रही है इसलिए हस्तलिखित ग्रंथों में भी अनेक लोककथाएं, लोकगीत, कहावतें, पहेलियाँ और लौकिक काव्यादि लिखित रूप में प्राप्त हो जाते हैं. राजस्थानी भाषा में लोक साहित्य के अन्तर्गत हजारों की संख्या में लोकगीत, लोककथाएं, कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, पवाड़े और ख्याल (लोक-नाटक) प्रचलित हैं. धार्मिक सिद्धांतों के प्रचार के लिए अनेक जैन साहित्यकारों ने भी लोक साहित्य की विभिन्न शैलियों में अपनी रचानाएं लिखी हैं जिनमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है. राजस्थानी लोक साहित्य मौखिक होने से लुप्त होता जा रहा है इसलिए इसको तुरन्त ही वैज्ञानिक विधियों से लिपिबद्ध करना आवश्यक है. राजस्थानी भाषा में 'पाबू जी रा पवाड़ा,' 'बगड़ावत' और 'निहालदे' नामक महाकाव्य अभी तक मौखिक रूप में प्रचलित हैं. आकार-प्रकार की दृष्टि से इनका महत्त्व महाभारत से कम नहीं माना जा सकता.

आधुनिक-साहित्य

भारत में ब्रिटिश-शासन की स्थापना के पश्चात् नवीनता का सूत्रपात हुआ है. इसी समय राजस्थानी साहित्य में भी नवीन विचारों और नवीन विधाओं का समावेश होने लगा. राजस्थान में राजाओं और अंग्रेजों के दोहरे शासनकाल में प्रेस एवं प्रकाशन कार्यों पर कड़े प्रतिबन्ध लगाए गए जिनके परिणाम स्वरूप आधुनिक राजस्थानी साहित्य का प्रकाशन यथेच्छ मात्रा में नहीं हो सका. तथापि शिवचन्दजी भरतिया, रामकरणजी आसोपा, गुलाबचन्दजी नागोरी, डा० गौरीशंकर जी हीराचन्द ओझा, पुरोहित हरिनारायणजी प्रभृति अनेक समर्थ साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से राजस्थानी साहित्य को समृद्धिशाली बनाया. आधुनिक काल में मुनि जिनविजयजी, अगरचन्दजी नाहटा, नरोत्तमदासजी स्वामी, डा० मोतीलाल, कन्हैयालालजी सहल, मनोहरजी शर्मा, सीतारामजी लालस, डा० तेस्सीतोरी, डा० जार्ज गियर्सन, डा० एलन, डा० सुनीतिकुमार जी, चादुर्या प्रभृति विद्वानों ने राजस्थानी भाषा साहित्य का विशेष अध्ययन किया और रानी लक्ष्मी कुमारीजी चूंडावत जैसे अनेक गद्यलेखक राजस्थानी साहित्य को समृद्ध करने में संलग्न हैं. राजस्थानी कवियों में नारायण सिंह भाटी और कन्हैयालाल सेठिया की विविध विषयक रचनाएं, चन्द्रसिंह और नानूनाम की प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ, मेघराज मुकुल और गजानन वर्मा के गीत, रेवतदान चारण की ओजस्वी रचनाएं और विमलेश और बुद्धिप्रकाश की हास्यरसात्मक रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं. वर्तमान में सैकड़ों ही कवि और लेखक राजस्थानी भाषा को सम्पन्न करने में सचेष्ट हैं और इनकी रचनाओं का जनता में विशेष प्रचार-प्रसार है.

---

१. राजस्थानी सन्त-साहित्य के विषय में विस्तृत विवरण, लेखक के अन्य निबन्ध (श्री कनोई अभिनन्दन ग्रन्थ ४० ए०, हनुमान रोड़ नई दिल्ली में प्रस्तुत किया गया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्यकार

आधुनिक भारतीय भाषा के साहित्य में प्राचीनतम रचनाएं जैन साहित्यकारों द्वारा रचित ही उपलब्ध होती हैं. जैन साहित्य का महत्त्व प्राचीनता के साथ ही गद्य की प्रचुरता, काव्यों की विविधरूपता और जीवन को उच्च उद्देश्य की ओर अग्रसर करने की क्षमता के कारण है. जैन साहित्यकार सामान्य सांसारिक जीव नहीं हैं वरन् वे जीवन के विस्तृत अनुभवों से युक्त और साधना के उच्च धरातल पर पहुँचे हुए ज्ञानी-महात्मा हैं. अतएव जैन-साहित्य शुद्ध साहित्यिक तत्त्वों से युक्त होता हुआ भी उपदेश-तत्त्वों से पूर्ण है. जैन-साहित्य में शुद्ध साहिरियक तत्त्वों के साथ ही उसकी उपयोगिता के तत्त्व भी उपलब्ध होते हैं.

अनेक इतिहासकारों ने धार्मिक तत्त्व होने से जैन-साहित्य का समावेश अपने इतिहास-ग्रंथों में नहीं किया है. वास्तव में धार्मिक तत्त्वों से हीन साहित्य को साहित्य भी नहीं कहा जा सकता. सूर और तुलसी जैसे अनेक साहित्यकारों का साहित्य पूर्णरूपेण धार्मिक है जिसका समावेश इन ग्रंथों में किया गया है. इन इतिहासकारों ने, प्राचीनकाल में अन्य रचनाएं उपलब्ध नहीं हुई तब अवश्य ही काल-स्थापना के लिए जैन-रचनाओं का उल्लेख किया है.

जैन साहित्यकारों ने वास्तव में केवल धार्मिक विषयों पर ही नहीं लिखा, वरन् वैद्यक, कोष, नगर-वर्णन, काव्य-शास्त्र, इतिहास, भूगोल, वास्तु-विद्या आदि अनेक विषयों पर अधिकारपूर्वक यथातथ्य निरूपण करते हुए लिखा है.

जैन-साहित्यकारों ने अनेक साहित्यिक विधाओं की सृष्टि की. पद्य के अन्तर्गत प्रबन्ध, रास, रासो, भास, चउपई, फाग, बारहमासा, चउमासा, दूहा, गीत, धवल, गजल, संवाद, मात्रिका, स्तवन, सज्झाय, और मंगल आदि विविध रूप जैन साहित्यकारों द्वारा विकसित हुए. इसी प्रकार गद्य के अन्तर्गत वार्ता, कथा, टीका, टब्बा और बालावबोध आदि के रूप लिखे गये.

जैन-साहित्यकारों ने प्राचीन साहित्य की रक्षा में भी अपूर्व योग दिया है. जैन-भण्डारों में जैन और अजैन दोनों ही प्रकार के प्राचीन ग्रंथ सुरक्षित रहे हैं. जैन साहित्यकार प्राचीन ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ आज तक करते रहते हैं और इस प्रकार प्राचीन जीर्ण प्रतियों का पुनरुद्धार होता है. प्राचीन ग्रंथ-सुरक्षा की दृष्टि से जैसलमेर ग्रंथ भण्डार का उदाहरण हमारे लिये आदर्श बना हुआ है.

राजस्थानी जैन साहित्यकारों में वज्रसेन सूरि का 'भरतेश्वर बाहुबलि घोर' राजस्थानी भाषा की प्राचीनतम रचना मानी जाती है. इस रचना में कवि ने ४६ पद्यों में भरतेश्वर और बाहुबली का युद्धवर्णन किया है. इस काव्य में शांत रस का भी समावेश है.

राजस्थानी साहित्य के वीर-गाथाकाल के प्रधान कवि शालिभद्र सूरि हुए, जिन्होंने वि० सं० १२४१ में 'भरतेश्वर बाहुबली रास' काव्य लिख कर रास परम्परा के अंतर्गत वीर-रसात्मक काव्यों का श्रीगणेश किया. मुहम्मदगोरी की पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध तराइन युद्ध (वि० सं० १२४०, ई० ११७३) की विजय से जनता में प्रबल प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई और वीररस का संचार हुआ. फलस्वरूप शालिभद्रसूरि जैसे कवि भी अपने आपको सम-सामयिक वीर-भावना से वंचित न कर सके.

सम-सामयिक वीर-भावना के परिणाम स्वरूप जैन-साहित्य में भरतेश्वर और बाहुबलिविषयक काव्य-निर्माण की सुदीर्घ परम्परा प्रचलित हुई. भरत और बाहुबली के मध्य हुए युद्ध के दृश्य अर्बुदाचल के सुप्रसिद्ध जैन-मंदिर विमल-वसही में सुन्दरतापूर्वक उत्कीर्ण किये हैं.[1] यह रास वीररसपूर्ण होते हुए भी निर्वेदान्त है. इसमें उत्साह, दर्प और स्वाभिमान-पूर्ण उक्तियों की काव्यात्मक पंक्तियाँ विशेष पठनीय हैं. अनेक स्थल नाटकीय संलापों से अलंकृत हैं, यथा

---

१. भरतेश्वर—बाहुबलि रास, सं० लालचन्द भगवानदास गांधी, प्राच्य विद्या मंदिर. बड़ौदा, प्रस्तावना पृ० ५३-५६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिसागर भरतेश्वर-संवाद, दूत-बाहुबलिसंवाद आदि—दूत-बाहुबलिसंवाद का एक उदाहरण निम्न है :

दूत पभणइ, दूत पभणइ बाहुबलि राउ
भरहेसर चक्क धरु कहि न कवणि दूहवण कीजह,
वेगि सुवेगि बोलिह संभलि बाहुबलि ।
विण बंधव सवि संपइ ऊणी, जिम विण लवण रसोई अलूणी ।
तुम बंसणि उत्कंठित राउ, नितु नितु बाट जोह भाउ ॥

बाहुबली दूत को वीरतापूर्वक उत्तर देते हैं:

राउ जंपइ, राउ जंपइ सुणिन सुणि दूत ।
जं विहि लिहीउं भाल भलि तंजि, लोह इह लोह पामइ ।
अरि रि देव न दानव महिमंडलि मंडलैव मानव
काइ न लंघइ लहिया लहि, लाभहि अधिक न ओभा दहि ।

इस रास में सेना-वर्णन, दिग्विजय-वर्णन, हाथी घोड़ों और सैनिकों के अनेक वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण हैं किन्तु भाषा में सर्वत्र प्रवाह और अनुप्रासों की छटा वर्तमान है. वीर-रसात्मक काव्यों में सेना-यात्रा के प्रसंग अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं. भरतेश्वर बाहुबलि रास में सेनायात्रा का वर्णन इस प्रकार है—

ठवणि
अहि डग्गमि पूरब दिसिहिं, पहिलउं चालिय चक्क ।
धूजिय धरयल थरहरए, चलिय कुलाचल-चक्क ॥१८॥
पूठि पियाणुं तउ दियए, भुयबलि भरह नरिंदु तु ।
पिडि पंचायण परदल हैं, हलिचलि अवर सुरिंदु ॥१९॥
वज्जिय समहरि संचरिय, सेनापति सामंत,
मिलिय महाधर मंडलिय, गाढ़िय गुण गज्जंत ॥२०॥

कवि साधारु ने संवत् १४११ वि० (१३५४ ई०) में 'प्रद्युम्नचरित्र' लिखा. इस काव्य में कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्नकुमार का चरित्र ७०० पद्यों में वर्णित है.

कवि छीहल का रचनाकाल सं० १५७४ [१५१७ ई०] है जिन्होंने 'पंचसहेली रा दूहा' लिखा. कवि ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

चउरासी अगलइ सइ, जु पन्द्रह संवच्छर ।
सुकल पक्ष अष्टमी, मास कातिक गुरु वासर ॥
हृदय ऊपनी बुद्धि, नाम श्री गुरु को लीन्हउ ।
नाल्हिग बसिनाथू सुतनु, अगरवाल कुल प्रगट रवि ॥
बावनी सुधा रचि बिस्तरो, कवि कंकण छीहल कवि ॥२३॥

१. आत्मप्रतिबोध जयमाल २. उदरगीत ३. पंथीगीत और ४. छीहल बावनी या बावनी छीहल कवि की प्रसिद्ध रचनायें हैं.

विनयसमुद्र बाकानेर के उपकेशगच्छीय वाचक हरसमुद्र के शिष्य थे, जिनका समय सं० १५८३ से १६१४ तक है. इनकी रचनायें इस प्रकार हैं :

१. हिन्दी काव्यधारा, राहुल सांकृत्यायन पृ० ४००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. विक्रम पंचदंड चोपाई २. अम्बड चौपाई (१५६६) ३. आराम शोभा चौपाई (१५८३) ४. मृगावती चौपाई (१६०२) ५. चित्रसेन पद्मावती रास (१६०४) ६. पद्म चरित्र (१६०४) ७. शील रास (१६०४) ८. रोहिणेय रास (१६०५) ९. सिंहासन बत्तीसी चौपाई, (१६११), १०. नल दमयंती रास (१६१४), ११. संग्राम सूरि चौपाई, १२. चंदनबाला रास, १३. नमि राजर्षि संधि (१६३२) १४. साधु वंदना (१६३६), १५. ब्रह्मचरि, १६. श्रीमंधर स्वामी स्तवन, १७. शत्रुंजय गिरि मंडण श्री आदिश्वर स्तवन, १८. स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तवन, १९. पार्श्वनाथ स्तवन, २०. इलापुत्र रास.

इनकी एक रचना का उदाहरण इस प्रकार है :

ताहरइ दरसण दुरित पुलाई, नव निधि सबि मंदिर थाई, जाई रोग सबि दूरो ।
समरण संकट सगला नासइ, बाध संग पुण नावइ पासइ, आपइ आणंद पूरो ।
वामेय वसुहानंद दायक, तेज तिहुयण नायको ।
धरणेन्द्र सेवत चरण अनुदिन, सयल वंछिय दायको ।
थंभणाधीश जिणेश प्रभु तूं, पास जिणवर सामिया ।
वीनती विनइ पयोध जंपइ, सयल पूरवि कामिया ।

सोलहवीं सदी के जैन कवियों में खरतरगच्छीय कुशललाभ का स्थान महत्त्वपूर्ण है. इनका जन्म सं० १५८० के लगभग माना जाता है. इन्होंने 'माधवानल चोपाई' 'ढोलामारवणीरी चौपाई' और 'पिंगल शिरोमणि,' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचनाएँ कीं. इनकी अन्य स्फुट रचनाएँ भी उपलब्ध होती हैं.

हीरकलश, खरतरगच्छीय सागरचन्द्र सूरि-शाखा के कवि हो गये हैं जिनका जन्म सं० १५९५ माना जाता है. हीरकलश ज्योतिष के विशेष ज्ञाता थे. इनका रचित साहित्य २८ रचनाओं में उपलब्ध हो चुका है. इनके मोती-कपासिया संवाद का उदाहरण इस प्रकार है :

मोती : देव पूजउ गुरु त गति जिहां, मंगल काजि विवाह ।
आदर दीजइ अम्हां तणी, सवि ज करइ उछाह ॥

कपासिया : संभलि तवइ कपासीउ, मोती म हूय गमार ।
गरब न कीजइ बापड़ा, भला भली संसार ॥

मोती : कहि मोती सुण कांकडा, मइ तइ केहो साथ ?
हुं साव्हुं कंचण सरिस, तइ खल कूकस बाथ ।
मइ सुर नरवर भेटिया, कीधां जीहां सिंगार ।
तइ भेटीया गोधण वलद, जिहां कीधा आहार ॥

कपासिया : उत्तर दीयइ कपासीयउ, अन्न आहार जोइ ।
गायां गोरस नीपजइ, वलदे करसण होइ ।
गोधण जदि वाटउ न हुइ, तदि वरतइ कंतार ।
धान वडइ तब बेचीयइ, सोवन मोती हार ॥

हेमरत्न सूरि का समय अनुमानतः सं० १६१६ से १६७३ है. इनकी सं० १६४५ में रचित 'गोरा बादल पदमिणी चऊपई' विशेष प्रसिद्ध है. इस रचना में अलाउद्दीन के चित्तौड़—आक्रमण और गोरा बादल की वीरता का वर्णन है. इस कृति में कवि ने विभिन्न रसों का समावेश किया है :

"वीरा रस सिणगार रस, हासा रस हित हेज ।
साम-धरम रस सांभलउ, जिम होवइ तन तेज ॥"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी रचना का उदाहरण इस प्रकार है :

पांन पदारथ सुघड़ नर, अणतोलीया विकाई। जिम जिम पर भुइ संचरइ, मोलि मुहंगा थाइ।
हंसा नइं सरवर घणां, कुसुम केती भवरांह। सापुरिसां नइं सज्जन घणा, दूरि विदेस गयांह।

सत्रहवीं सदी के जैन साहित्यकारों में समयसुन्दर (सं० १६२० से १७०२) का स्थान महत्त्वपूर्ण है. इनकी रचनायें अनेक हैं जिनका प्रकाशन समयसुन्दर कृत 'कुसुमांजलि' में श्री अगरचन्द जी नाहटा द्वारा संपादित रूप में हो चुका है. इनके गीतों के विषय में प्रसिद्ध है :

"समयसुन्दर रा गीतड़ा, कुंभे राणे रा भींतड़ा।"

अर्थात् जिस प्रकार महाराणा कुंभा द्वारा बनवाया हुआ चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ, कुंभश्याम का मन्दिर और कुँभलगढ़ प्रसिद्ध है उसी प्रकार समयसुन्दर के गीत प्रसिद्ध हैं.

कवि उदयराज जोधपुर नरेश उदयसिंह जी के समकालीन थे. इनका (ज० सं० १६३१-१६७४ ई०) माना जाता है. इनकी रचनाओं में 'भजनछत्तीसी' और 'गुणबावनी' महत्त्वपूर्ण है.

जिनहर्ष का अपर नाम जसराज था. इनकी रचनाओं में जसराज बावनी (सं० १७३८ वि० में रचित) और नन्द बहोत्तरी (सं० १७१४ में रचित) प्रसिद्ध हैं.

१८ वीं शताब्दी में आनन्दघन नामक कवि ने 'चौबीसी' नामक रचना में तीर्थंकरों के स्तवन लिखे. इनका देहान्त मारवाड़ में सं० १७३० वि० में हुआ. इनका आध्यात्मिक चिंतन उच्चकोटि का था :

राम कहो रहमान कहो, कोउ कान कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेव री॥
भाजन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कल्पना रोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
निज पद रमे राम सो कहिए, रहिम करे रहेमान री।
कर से करम कान से कहिए, महादेव निर्वाण री॥
परसे रूप पारस सो कहिए, ब्रह्म चीन्हें सो ब्रह्म री।
इस विध साधो आप आनंदघन, चेतनमय निःकर्म री॥

उत्तमचन्द और उदयचन्द भंडारी जोधपुर के महाराजा मानसिंह के मंत्री थे. इनका रचनाकाल सं० १८३३ से १८८६ तक है. दोनों ही भंडारी बन्धुओं ने अनेक रचनाएँ कीं जिनसे इनके काव्यशास्त्रीय और आध्यात्मिक ज्ञान का परिचय मिलता है.

जैन साहित्यकारों की संख्या सैकड़ों ही नहीं हजारों तक पहुंचती है. प्रत्येक काल में साहित्यकारों की रचनाएँ विकसित अवस्था में और विविध रूपों में प्राप्त होती हैं. जैन साहित्य मुख्यतः राजस्थान और गुजरात में रचा गया क्योंकि प्राचीनकाल में जैन धर्म का प्रचार भी मुख्यतः इन्हीं प्रदेशों में हुआ. जैन साहित्यकारों ने सदा ही लोक-भाषा, राजस्थानी और गुजराती में अपनी रचनाएँ लिखीं जिससे इनका प्रचार समस्त जनता में सुदूर देहातों तक में हुआ. संस्कृत और हिन्दी में रचित जैन साहित्य भी उपलब्ध होता है किंतु अत्यल्प मात्रा में ही. राजस्थानी भाषा में रचित जैन साहित्य राजस्थान ही नहीं देशविदेश के अनेक ग्रंथ-भंडारों में मिलता है. राजस्थान के अनेक स्थानों में जैन साहित्य सम्बन्धी हजारों ही हस्तलिखित ग्रन्थ बिखरे हुए धूल-धूसरित और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़े हुए हैं. इन ग्रन्थों के विधिवत् संरक्षण, सूचीकरण, संपादन और प्रकाशन की अब अनिवार्य आवश्यकता है. इस प्रकार के कार्यों के पूर्णरूपेण सम्पादित होने पर ज्ञात होगा कि जैन साहित्यकारों का राजस्थानी साहित्य के निर्माण एवं विकास में महत्त्वपूर्ण योग रहा है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org